[illegible]

जनसत्ता 19 मई, 2014 : मैंने अपनी व्यक्तिगत दृष्टि बदलने की कोशिश की है, अपने सिद्धांत एक किनारे रख दिए हैं। दिल-दिमाग मेरा है, पर सोच-समझ और विचार मेरे नहीं हैं। मैं अपनी नजर में जहां तक जो कुछ देख पा रहा हूं, वह देख कर केवल तटस्थ बना हुआ हूं। इसमें बड़ी राहत है। किसी विशेष विचारधारा या राजनीतिक दल के पक्ष में बने रहने का भाव कचोटता है। व्यक्ति, राजनीति या इनसे संचालित समाज- सबकी अपनी-अपनी विचारधाराएं थीं। विचारधाराओं का जन्म अच्छाई और भलाई के लिए ही हुआ होगा, मगर कालांतर में विचारधाराएं अगर मानवीयता से अलग हुईं और खुद में उलझ कर अनसुलझी हो गईं तो यह मानवीय रिश्तों की अपरिपक्वता के कारण हुआ।

श्रेष्ठ पारिवारिक जीवन जब संबंधों की कमजोरी के कारण दरकने लगे तो पंचायत-समाज का निर्माण हुआ। पंचायत-समाज ने पारिवारिक संबंधों की कमजोरी को सुधारने की जिम्मेदारी तो ले ली, लेकिन वह भी अपने निर्धारित मानकों के उल्लंघन में फंसता चला गया। फलस्वरूप लोकोपचार की नीति राष्ट्रीय स्तर पर बनाने की कोशिश हुई, जिसके लिए लोकतंत्र नामक शब्द आया। इस लोकतंत्र को संभालने के लिए सरकार बनी। यह पूरी प्रक्रिया केवल पिछले साठ-पैंसठ सालों से ही नहीं है। यह मनुष्यों के बीच परस्पर व्यापारिक लेन-देन होने के समय से ही शुरू हो गई होगी, ऐसा विश्वास के साथ कहा जा सकता है। दरअसल, परिवार को छोड़ कर पंचायत से लेकर संसदीय लोकतंत्र तक जो भी सामाजिक गठन हुआ है, वह केवल पारिवारिक, मानवीय संबंधों की चिंता के कारण नहीं हुआ। यह व्यापारिक गतिविधियों को सुगमता से चलाने के लिए किया गया। आज परिवार, पारिवारिक सदस्य और संबंध लोकतंत्र के नाम पर चल रही व्यापारशाला के अंदर घुटने के लिए बंद हो गए हैं। परिवार अब केवल जीवन संबंधी परस्पर जरूरतों के अड्डों में बदल गए हैं। पारिवारिक मूल्यों में व्यापार से पनपा सोच घुस गया है, जो दीमक की तरह संबंधों को खाए जा रहा है।

इन स्थितियों में धर्म, जाति, राजनीतिक दल के रूप में अनेक विचारधाराओं की बात ही बेमानी है। वास्तव में आज पारिवारिक मूल्यों, संस्कृति के बिना पलने-बढ़ने वाला मानव सिर्फ मानवीय उत्पाद में बदल रहा है। यह उत्पाद समूह रूप में एक दल विशेष की विचारधारा की बात कैसे कर सकता है, क्योंकि विचारधाराओं को पोषित करने वाली परिवार इकाई संस्कृति मूल्यविहीन हो गई है। जब हम परिवार में एक होकर नहीं रह पा रहे हैं तो सामाजिक या फिर राजनीतिक दलगत एकता कैसे संभव हो सकती है! और जब यह संभव नहीं तो देश का विकास और लोगों का कल्याण जैसे मानक कैसे तय होंगे?

लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत बंटी हुई अनेक विचारधाराओं को देखने के लिए जो तटस्थ दृष्टि मैंने अपनाई है, सबको वही दृष्टि अपनानी होगी। इससे हममें यह विवेक जागेगा कि हम मानवीय मूल्यों के पतनकाल में सबसे कम पतित लोकतांत्रिक व्यवस्था के पैरोकार को चुन सकें। परस्पर सम्मान और भरोसा जब पिता-पुत्र, माता-पुत्री, भाई-बहन या पति-पत्नी में ही नहीं रहा तो यह हमें लोकतांत्रिक व्यवस्था संभालने वाले राजनीतिक दलों में कैसे परिलक्षित होगा! इसी बिंदु पर हमें किसी दल या वर्ग विशेष के प्रति निरपेक्षता का भाव उत्पन्न करना होगा। अपनी अंतर्दृष्टि जागृत करके भारतीय राजनीति को सालों पुराने सोच के बजाय एकसूत्र में एक नई नजर से देखना होगा।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्वटिर पेज पर फॉलो करने केलि क्लकि करें- https://twitter.com/Jansatta